पाकिस्तान से युद्ध जीतने के पश्चात हम क्या करेंगें?

पश्चिमी सीमाओं पर युद्ध के बादल मंडरा रहे हैं। स्वतंत्रता के पश्चात (और संभवतः भारत के सम्पूर्ण इतिहास में) यह पहला अवसर है जब दिल्ली के सिंहासन पर बैठे व्यक्ति आक्रमण की भाषा बोल रहे हैं। भारत की नीति अपनी ही धरती पर आत्मरक्षात्मक युद्ध लड़ने की है। पाकिस्तान के साथ १९४८ एंव १९६५ के युद्ध, चीन के साथ १९६२ का युद्ध तथा अभी हाल का कारगिल का संघर्ष – सभी में भारत बचाव कर रहा था। १९७१ के युद्ध के बारे में कुछ भिन्न विचार हो सकते हैं क्योंकि भारत ने बांगलादेश को स्वतंत्र कराया था। पर अधिकारिक रूप से भारत ने सदा यह कहा है कि भारत पर आक्रमण हुआ था और बचाव के लिए भारत ने युद्ध लड़ा। बांगलादेश को स्वतंत्र कराने का हमारा कोई इरादा नहीं था। वह तो बस यूँ ही प्रसंगवश हो गया।

आक्रमण न करने की नीति भारतीय शासक वर्ग के मानस में कुछ ऐसी गहरी पैठी है कि प्रतिरक्षात्मक उद्देश्यों को छोड़ कर लड़ा गया प्रत्येक युद्ध उन्हें घोर पाप प्रतीत होता है। संसद भवन पर हमले के बाद स्थिति में कुछ बदलाव आया। पहली बार भारतीय नेता पाकिस्तान को सबक सिखाने की, आतंकवादियों का सीमापार पीछा करने की तथा आर–पार की लड़ाई की भाषा बोलने लगे हैं।

केवल शासक वर्ग ही नहीं, देश का आम नागरिक भी पाकिस्तान के विरूद्ध खुला युद्ध करने की बात कर रहा है। वह चाहता है कि आतंकवाद नामक बीमारी को जड़ से समाप्त कर दिया जाए। सच तो यह है कि देश का राजनैतिक वर्ग जनभावनाओं को प्रतिध्वनित कर रहा है। आर–पार की लड़ाई, धैर्य समाप्त होने तथा आतंकवादियों का पीछा करने जैसे कड़े शब्दों के प्रयोग ने विश्व को अचंभित कर दिया है। परन्तु इन कड़े शब्दों को चौराहों पर एवं पान की दुकानों के पास चलती चर्चाओं में भी सुना जा सकता है। जनमानस में प्रज्जवलित प्रतिशोध की अग्नि में नेतत्व के कड़े शब्दों ने घी का काम किया है। देश आज युद्ध के लिए अधीर हो उठा है।

युद्ध के लिए लालायित देश को एक क्षण रूक कर यह प्रश्न पूछना चाहिए कि पाकिस्तान से युद्ध जीतने के पश्चात हम क्या करेंगें? आज यह प्रश्न कुछ विचित्र प्रतीत हो सकता है। कुछ लोगों के मत में प्रश्न इसका ठीक उलटा होना चाहिए – यदि भारत युद्ध हार गया तो क्या होगा? पर यह एक काल्पनिक असंभावित परिस्थिति पर आधारित है क्योंकि अभी तक भारत ने पाकिस्तान से प्रत्येक युद्ध जीता है। लेकिन पहला प्रश्न काल्पनिक नहीं है। पहला प्रश्न वास्तव में पाकिस्तान के विरूद्ध युद्ध में भारत की रणनीति के लक्ष्य परिभाषित करने का प्रयास है।

जव अमेरिका ने ७ अक्टूबर, २००१ को अफगानिस्तान में आक्रमण प्रारंभ किया था तो अमरीका के रणनीतिक उद्देश्य अत्यंत स्पष्ट थे – (क) ओसामा बिन लादेन को जिन्दा या मुर्दा पकड़ना (ख) अफगानिस्तान में तालिबान के स्थान पर नये शासकों को स्थापित करना । इन लक्ष्यों को कार्यवाही से जुड़ा हर व्यक्ति और पूरा विश्व समझ रहा था। जमीनी सैन्य कार्यवाही का राजनैतिक तथा कूटनीतिक

© All Rights Free

प्रयासों के साथ पूर्ण तालमेल था। सैन्य तथा राजनैतिक नेतत्व के लक्ष्य एक थे, अतः दिशा भी एक थी।

इसी प्रकार भारतीय सेना को १९७१ में तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान में एक स्पष्ट लक्ष्य दिया गया था – बांगलादेश का निर्माण। उसके बाद जो हुआ, वह इतिहास में अंकित है। इसके ठीक विपरीत स्थिति तब बनी थी जब बिना किसी स्पष्ट लक्ष्य के भारत ने श्रीलंका में शांति सेना भेजी थी। लगभग १२०० सैनिक अकारण शहीद हुये थे। श्रीलंका तथा पूरे विश्व में भारत मजाक एवं नफरत का पात्र बन गया था। स्पष्ट सुपरिभाषित लक्ष्य एवं दिशाहीनता के मध्य अंतर स्पष्ट है। स्वतंत्र भारत के प्रथम आक्रामक युद्ध की तैयारी का बिगुल बज रहा है पर न तो दिशा स्पष्ट है न ही लक्ष्य।

बार–बार यह दोहराया जा रहा है कि प्रस्तावित युद्ध का लक्ष्य आतंकवाद का सफाया है। यह समझ नहीं आता कि आतंकवाद को समाप्त करने की प्रक्रिया क्या होगी। भारतीय मानसिकता कुछ इस प्रकार की प्रतीत होती है कि एक बार जम कर पाकिस्तान की धुलाई कर दी जाए तो पाकिस्तान की अक्ल ठिकाने आ जाएगी और वह रातों–रात शैतान से संत बन जाएगा। अंग्रेजी में इस सिद्धांत को ब्लडी नोज या खून बहती नाक का सिद्धांत भी कहते हैं। यह सिद्धांत और उसकी शब्दावली गली–मुहल्ले में चलने वाली झड़पों से विकसित हुई है। इस सिद्धांत के पीछे मूल भावना यह है कि पिटाई से अक्ल ठीक हो जाती है। यह बात गली–मुहल्ले तक तो सही हो सकती है पर राष्ट्रों के संदर्भ में सही नहीं है। धार्मिक उन्माद और मतान्धता का इलाज तो खून बहती नाक कतई नहीं है। सत्य तो यह है कि पिटाई से धार्मिक मतान्धता की अग्नि और भड़कती है तथा उसमें शहीदी का जज्बा पैदा होता है। धुलाई के सिद्धांत के साथ एक समस्या यह भी है कि धुलाई में अंतिम बिंदु परिभाषित नहीं होता। यह दावे के साथ कोई नहीं कह सकता कि कितनी धुलाई पर्याप्त है। साथ ही किसी भी युद्ध में नुकसान दोनों पक्षों का होता है अतः यह कहना कठिन होता है कि किसकी नाक से खून बहा और किसकी से नहीं बहा। क्या वियतनाम के युद्ध में अमरीका ने वियतनाम की नाक से खून बहाया था या खुद अपना चेहरा लहूलुहान करा लिया था।

स्पष्ट है कि गली–मुहल्ले के धुलाई सिद्धांत पर अमल करते हुए आक्रामक युद्ध प्रारंभ करना एक बड़ी भूल होगी। आक्रमण करने के पूर्व अपने लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को सूक्ष्मता से तय करना अत्यन्त आवश्यक है। इस विषय में पाकिस्तान के विचार बहुत साफ हैं। पाकिस्तान लाल किले पर झंड़ा फहराना चाहता है वह भारत पर राज करना चाहता है इसीलिए अपनी मिसायलों का नाम उन हमलावरों के नाम पर रखता है जिन्होंने भारत को लूटा और बर्बाद किया। इसके ठीक विपरीत जिस जमीन पर आज पाकिस्तान का कब्जा है, उस पर राज करने की भारत की कोई मंशा नहीं है।

एक क्षण के लिए कल्पना करें कि भारतीय सेनाएँ आगे बढ़ते हुए इस्लामाबाद पर कब्जा कर लेती हैं; १९७१ का इतिहास दोहराता है और जिस प्रकार जनरल नियाजी ने ढाका में आत्मसर्मपण किया था, ठीक उसी प्रकार जनरल मुर्शरफ भी सिर झुका कर समर्पण के कागजों पर हस्ताक्षर कर देते हैं। भारत इसके बाद क्या करेगा? क्या भारत पाकिस्तान को अपना उपनिवेश बना कर राज करेगा? या फिर पश्चिमी पंजाब, सिंध और बलूचिस्तान को भारत मे विलीन कर वहाँ के निवासियों को पूर्ण लोकतांत्रिक अधिकारों से संपन्न कर भारत का नागरिक बना लेगा? प्रथम विकल्प की संभावना लगभग शून्य है। न तो भारत का उपनिवेशवाद का कोई इतिहास है और न ही हमारे शासक वर्ग में उस प्रकार की कोई मानसिकता है। यदि दूसरे विकल्प को स्वीकार किया जाता है तो हमारी समस्याएँ कम होने के स्थान

पर बढ़ जाएँगी। वर्तमान सीमारेखा के समाप्त होने से उस क्षेत्र के निवासियों (जिनमें आतंकवादी भी होंगें ही) के भारत में निर्बाध प्रवेश पर कोई रोक–टोक नहीं होगी। आतंकवादी पूरे देश में विचरण करने के लिए स्वछंद हो जाएंगें। इन नये प्रांतों की आबादी को मिले मताधिकार के कारण भविष्य में होने वाले चुनावों पर भी प्रभाव पड़ेगा। इस संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता कि विलीनीकरण से लाल किले पर झंडा फहराने के पाकिस्तानी सपने को पूरा करने में परोक्ष रूप से मदद मिलेगी। यदि ऐसा हुआ तो हम युद्ध जीत कर भी हार जाएँगें तथा एक लोकतांत्रिक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के रूप में भारत का अस्तित्व खतरे में आ जाएगा।

सीमित विजय जैसे कि लाहौर या पाक–अधिकत काश्मीर पर कब्जा भी भारत के लिए कुछ इसी प्रकार की उलझनें उत्पन्न करेगी। हम इजरायल की तर्ज पर आतंकवादियों पर पीछा करने की बात तो कर सकते हैं पर इजरायल की बसाहट सम्बन्धी नीतियों का पालन बिल्कुल नहीं कर सकते। जिस प्रकार इजरायल ने पश्चिमी तट पर यहूदियों को बसाया, क्या भारत उसी प्रकार लाहौर या पाक–अधिकृत काश्मीर में हिन्दुओं को बसा सकता है?

निकोलो मैकियावली ने ई० १५१३ में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द प्रिन्स' के पाँचवे अध्याय में लिखा था – 'ऐसे राज्यों को, जिन्हें स्वतंत्र रहने की आदत हो, जीतने के बाद उन पर पकड़ कायम रखने के तीन तरीके हैं। पहला उन्हें लूट कर बरबाद करना है। दूसरा वहाँ जा कर स्वयं रहना है। तीसरा तरीका वहाँ कुछ लोगों की ऐसी सरकार की स्थापना करना है जो उसे आपके प्रति मित्रतापूर्ण बनाए रखे तथा ऐसी मित्र सरकार से कुछ लगान इत्यादि लेकर उन्हें अपने स्वयं के कानूनों के अधीन जीने देना है।' अमरीका ने अफगानिस्तान में तीसरा विकल्प चुना। इजरायल ने पश्चिमी तट पर दूसरा विकल्प चुना था। नादिरशाह जैसे लुटेरे हमलावर, जिन्हें उनके कत्लेआम के लिए याद किया जाता है, पहला विकल्प चुनते थे। भारत के नेताओं एवं जनता को उपरोक्त तीन विकल्पों में से ही चुनना होगा। कोई चौथा विकल्प संभव ही नहीं है।

विकल्प का चुनाव हमें युद्ध में कूदने के पहले ही करना होगा। यह दिल्ली में किसी धूल खाती गोपनीय फाइल का मसला नहीं हो सकता। यह तो सम्पूर्ण राष्ट्र का संकल्प होना चाहिए जिसे हमें पूरे विश्व को समझाना होगा। हमें यह समझाना होगा कि जब तक पाकिस्तान अपने ढर्रे पर चलता रहेगा, भारत तथा विश्व शांति से नहीं जी सकता। आतंकवाद के सफाये के लिए पाकिस्तान की सत्ता–व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन आवश्यक है। पर हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि कहीं हम साँप को घायल करके ना छोड़ दें। हमें मैकियावली की पुस्तक के पाँचवें अध्याय को हृदयंगम कर युद्ध की तैयारी करनी होगी। गाँधी की शाँति एवं अहिंसा को पीछे छोड़ कर हम धुलाई, पिटाई तथा लहूलूहान नाक के सिद्धांत तक तो पहुँचे हैं। पर अब समय आ गया है कि हम गली–मोहल्ले की झड़पों वाली मानसिकता से ऊपर उठ कर राजनीतिशास्त्र के शाश्वत सिद्धांतों के आधार पर इस प्रश्न का उत्तर तय करें कि युद्ध जीतने के पश्चात हम क्या करेंगें।

अनिल चावला

७ जून २००२